Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
July to September 2025, E-Journal, Vol. I, Issue LI (51), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

# वैदिक (हिन्दू) संस्कारों की वैज्ञानिकता व समाजोपयोगिता

**सुमित्रा राणावत***

* शोधार्थी, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

1. **संस्कार –** संस्कार शब्द प्राचीन वैदिक साहित्य में नहीं मिलता किन्तु 'स' के साथ 'कृ' धातु संस्कृत शब्द बहुधा मिल जाते है। ऋग्वेद में संस्कृत धर्म के लिए प्रयुक्त हुआ है।

छान्दोग्य उपनिषद 6/16/1-2 में लिखा है –

**'तस्मादेष पथ यज्ञस्तस्य मनश्च वाक च वर्तिनी'** अर्थात उस यज्ञ की दो विधियां है मन से या वाणी से।

ब्रह्मा उनमें से एक को अपने मन से बनाया, चमकाता है।

जैमिनी के सूत्रों में 'संस्कार' शब्द अनेक बार आया है और सभी जगह पवित्र या निर्मल कार्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जैमिनी की 3/2/3 की व्याख्या में शबर ने 'संस्कार' शब्द का अर्थ बताया है–

**'संस्कारों नाम स भवति यस्मिनजाते पदार्थे भवति कस्य चिदर्थस्य'** अर्थात संस्कार वह है जिसके होने से कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य के लिए योग्य हो जाता है।

**तन्त्रवार्तिक के अनुसार – 'योग्यतां चादधाना: क्रिया: संस्कृत इव्युच्यन्ते'** अर्थात संस्कार की वे क्रियाएं तथा रितियां है जो योग्यताएं प्रदान करती है। वे योग्यता दो प्रकार की होती है –

(1) पाप मोचन से उत्पन्न योग्यता

(2) नवीन गुणों से उत्पन्न योग्यता

नवीन गुणों की प्राप्ति तथा तप से पापों का मार्जन होता है। संस्कार शब्द गृहसुत्रो में नहीं मिलता लेकिन धर्मसुत्रों में इनका कई बार प्रयोग हुआ है।

बार-बार किसी कर्म को करने से मनुष्य की विशेष प्रकार की आदतें बन जाती है। यही आदतें मनुष्य के बीज रूप में मन के गहरे तल पर जमा होती है। जो मृत्य के बाद भी मन के साथ ही अपने सुक्ष्म रूप में बनी रहती है और नया शरीर धारण करने पर अगले जन्म में उसी प्रकार के कर्म करने की प्रेरणा बन जाती है। पूर्वजन्म, कुल मर्यादा, सुशिक्षा, सभ्यता, संगति, वातावरण आदि का मन पर पड़ने वाला प्रभाव संस्कार कहलाता है।

व्यवाहारिक रूप में संस्कार का अर्थ 'पवित्र धार्मिक क्रियाओं के द्वारा व्यक्ति के वैदिक, मानसिक, बौद्धिक मुख्यत: आत्मिक परिष्कार के लिए किए जाने वाले अनुष्ठान, जिनसे व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को पूर्ण विकसित करके समाज का अभिन्न अंग बनते हुए मोक्ष की ओर अग्रसर हो।' अत: आवश्यक है कि व्यक्ति गर्भकाल से ही सुसंस्कृत हो अत: ऐसा आध्यात्मिक संस्कार से ही संभव हो सकता है।

राष्ट्र के आर्दश मूल्यों, प्रतिमाओं के प्रति आस्था, विश्वास उत्पन्न करने के लिए प्रयत्न पूर्वक संस्कार करना पड़ता है। तभी सामाजिक नीतियों, मूल्यों और अनुशासन का विकास होता है।

संस्कारों से ही जीवन के विभिन्न अवसरों को महत्व व पवित्रता मिलती है। संस्कार से मनुष्य की बौद्धिक, भावनात्मक व आत्मिक अभिव्यक्ति है। जिनके प्रति मानव सदा जाग्रत रहता है। संस्कार इस जन्म में और अगले प्रत्येक जन्म में संग्रहित होते चले जाते है जिन्हें 'संचित कर्म' कहा जाता है।

इस प्रकार संस्कारों की अटूट और अनंतहीन श्रंखला बनती जाती है। इसी से मानव के व्यक्तित्व का विकास होता है। ये संस्कार किसी विशेष प्रकार के कर्म करने की प्रेरणा देते हैं।

बलपूर्वक किसी कर्म करने को बाध्य नहीं करते। यह मनुष्य के पुरुषार्थ पर निर्भर करता है। क्योंकि यह क्षेत्र पुरुषार्थ का है। पूर्व जन्म के संचित संस्कार जो वर्तमान जीवन में उदित होकर अपना प्रभाव दिखाते है उसको 'प्रारब्ध' कहते हैं। वर्तमान जीवन में किए गए कर्मो को 'पुरुषार्थ' कहते हैं।

प्रारब्ध से पुरुषार्थ सदैव प्रबल होता है। पुरुषार्थ से पूर्व जन्म के अशुभ संस्कारों को परिवर्तित किया जा सकता है। पुरुषार्थहीन व्यक्ति इन पूर्व संस्कार से बंधा रहता है इसका मुख्य कारण अज्ञान है। मानव अज्ञानवश ही संसार में सभी प्रकार के दुष्कर्म करता है। अत: बिना भोगे कोई कर्म समाप्त नहीं होते।

2. **संस्कारो की आवश्यकता –** प्रकृति द्वारा प्राप्त होने वाली प्रत्येक वस्तु हमारे लिए उसी रूप में उपयोगी नहीं होती उसमें व्याप्त कई दोषों को दूर करने की आवश्यकता होती है। उपयोगी बनाने के लिए उसमें व्याप्त दोषों को दूर करके उसमें गुणों का समावेश आवश्यक है। खान से सोना निकलता है और वो उसी रूप में उपयोगी व कीमती नहीं होता। ताप या छेदन की प्रक्रिया से गुजर कर सोना बनता है। अर्थात प्रकृति से प्राप्त वस्तुएं विविध संस्कारों के द्वारा संपन्न होकर पूर्णता को प्राप्त होती है। मानव जैसा श्रेष्ठ प्राणी माता के गर्भ से ही विकसित मानव के रूप में उत्पन्न हो अर्थात उसे किसी भी प्रकार संस्कारित होने की आवश्यकता न हो यह कैसे संभव हो सकता है।

थोड़ा सोचे की एक ही माता-पिता से उत्पन्न संतानो को एक ही वातावरण में रखे जाने, एक ही प्रकार के शिक्षा के बावजूद भिन्न प्रकार का व्यवहार क्यों करने लगती है। उनकी मनोदशा भिन्न प्रकार की क्यों हो जाती है।

क्योंकि पूर्व जन्मों के भिन्न वातावरण में पलने के कारण उनके भिन्न-भिन्न संस्कार उनके मन में जमे रहते है जो उपयुक्त वातावरण मिलने पर विकसित होते है अन्यया सुस्त पड़े रहते परन्तु नष्ट नहीं होते। ये संस्कार ही मनुष्य के वर्तमान जीवन में कर्म के लिए प्रेरित करते है। ये संस्कार शुभ व

अशुभ दोनों हो सकते है इनमें अशुभ संस्कारों का परिशोधन करके नवीन संस्कारों को स्थापित किया जा सकता है। शक्ति किसी भी प्रकार की हो मूर्त या अमूर्त उसका सदूपयोग करना व्यक्ति की मानसिकता पर निर्भर करता है।

मानसिकता में परिर्वतन करने के लिए हमारे शास्त्रों संस्कारों का विधान किया गया है।

**3. महत्त्व –** आजकल मनुष्य उत्तम फसल की प्राप्ति के लिए जितने प्रयत्न कर रहा है, उतने प्रयत्न उत्तम संतान की प्राप्ति के लिए नहीं करता है। अच्छी फसल के लिए अच्छी भूमि, अच्छा बीज, उचित देखभाल की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार उत्तम संतान की प्राप्ति के लिए तीनों चीजों की आवश्यकता होती है। किन्तु मनुष्य के साथ एक चौथी वस्तु और लागू होती है, वह है उसके निजी संस्कार जिसे वह लेकर पैदा होता है। मानव में मानवीयता के विकास की प्रक्रिया उसके गर्भकाल से ही प्रारम्भ होती है, इस तथ्य की अनुभूति प्राचीनकाल में ही हो चुकी थी। नवजात बातको को कुटुम्ब और समाज के साथ जोड़ने का दायित्व माता–पिता तथा बाद में कुटुम्बियों का होता है।

सामाजिक जीवन में मानव कभी अकेला रहे। सामाजिकता उसकी आवश्यकता है, इसी आवश्यकता ने समाज का निर्माण किया, जीवन समाज में ही व्यतीत करना होता है। समाज के घटक कुटुम्ब में जन्मते है, जीवन समाज में व्यतीत करना होता है। कुटुम्ब का गढ़न होता है विवाह विधि के द्वारा। विवाह एक ही कुटुम्ब में नहीं होते। युवक व युवती समाज के भिन्न परिवारों से होते है। वैदिक संस्कार प्रणाली में मानव के निर्माण की आधारशिला तैयार करना ही 'गर्भाधान संस्कार' कहलाता है।

मानव का निर्माण माता–पिता के रज शुक्र अर्थात गर्भधान प्रक्रिया से होता है।

श्रेष्ठ व्यक्ति ही श्रेष्ठ राष्ट्र का निर्माण कर सकता है।

समाज, वातावरण, शिक्षा, वीर्यदोष, मानसिक दोष आदि के कारण उत्पन्न संतान में जो दोष उत्पन्न हो जाते है। इस विधि का पैतृक एवं वंशानुगत गुणो को सुरक्षित रखने एवं उन्नयन के लिए विशेष महत्त्व होता है।

वेदों में संस्कारों का बड़ा महत्त्व बतलाया गया है व्यक्ति के सामाजिक अधिकार प्राप्त करने लिए ही नहीं सुसंस्कृत होना आवश्यक माना गया है। संस्कारो के अभाव में मनुष्य अपूर्ण है। वह केवल श्वासयुक्त हाड–मांस का एक पिण्ड माना।

**संस्कारों के प्रकार**

महर्षि गौतम ने 40 संस्कार माने।
महर्षि अंगिरा ने 25 माने है।
मनुस्मृति व व्यासस्मृति में 16 संस्कारों का वर्णन मिलता है।
इन 16 संस्कारों को 2 भागो में विभक्त किया है –

**1. दोष मार्जन – ये 8 है –**

1. गर्भधान 2. पुंसवन
3. सीमंतोन्नयन 4. जातकर्म
5. नामकरण 6. निष्क्रमण
7. अन्नप्राशन 8. चूडाकर्म

इन संस्कारी को कराने से गर्भ के बीज का शोधन होता है इसलिए इन्हें दोष मार्जन कहा है। पूर्व जन्मों के कई प्रकार के धर्म एवं कर्म आते है इन संचित दोषों को दूर कने के लिए इन संस्कारों का विधान किया गया है। ये संस्कार पिता द्वारा कराए जाते है। इनमे गर्भ व बीज का दोष दूर होता है।

**2. गुणाधान संस्कार – ये 8 है –**

1. कर्णविध 2. विद्यारम्भ
3. उपनयन 4. समापवर्तन
5. विवाह 6. वानप्रस्थ
7. संन्यास 8. अंत्येष्ठी

**4. संस्कार का विधान –** वैदिक कर्मकाण्ड विद्या के प्रत्यक्ष लोक कल्याण पक्ष का महत्व हमें समझना चाहिए। सम्पूर्ण वेदिक कर्मकाण्ड किसी प्रकार के संस्कार और कुफल का क्षय करने के साथ जीवन में सुख शांति समृद्धि की अभिवृद्धि के लिए किया जाता हैं। सम्पूर्ण वैदिक कर्मकांड में काल या मुहूर्त का वैज्ञानिक आधार समझना आवश्यक हैं। वैदिक कर्मकांड का काल विज्ञान आज भी विचारशील पुरुषों के लिए मान्य सिद्धांत हैं। समय या काल का निर्धारण विज्ञान एवं गणित पर आधारित है। गणित के आधार पर ही विद्धानों और ज्योतिषों ने ग्रहों एवं नक्षत्रों के नियम का संग्रह ज्योतिष शास्त्र में किया। उन्होंने अपने सूक्ष्म अनुभवों द्धारा यह निश्चय किया कि किस अवस्था में, किस मुहूर्त में, किस प्रकार का कार्य करने से कैसा फल प्राप्त होता है।

हमारे शास्त्रों में गर्भाधान संबंध में अनेक इसी कथा एवं उदाहरण हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि यदि अमंगल में ऋतुमति स्त्री के मन में पुरुष पुरुष समागम की इच्छा हुई तो उसके फलस्वरुप विश्वा जैसे महान ऋषि के घर रावण जैसा पुत्र उत्पन्न हुआ। गर्भाधान से लेकर अंत्येष्टि तक मनुष्य के जन्म, उसके संवर्धन व अवसान समस्त प्रक्रियाएं जब तक संस्कार के द्धारा शुद्ध एवं परिष्कृत नहीं हो जाती तब तक जीवात्मा का न तो उचित परिष्कार होता है ना उसे वह सुख प्राप्त होता हैं, जो वास्तव में वह प्राप्त करना चाहता है। जितने भी संस्कार है उनका सबका आधार यही है की जीवात्मा का परिष्कार तब तक संभव नहीं हैं जब तक इसका कोई वैज्ञानिक आधार ना हो। वैज्ञानिक आधार के लिए तीन वस्तुएं अपेक्षित हैंरू–

1. लक्षण
2. परिक्षण
3. परिणाम

यदि किसी समान परिस्थिति में एक समान विशेष स्थान वाले स्थान पर किसी एक नीति ने परिक्षण या प्रयोग किया जाए, तो उसका परिक्षण निश्चित रूप से समान होगा।

**सौलह संस्कार**

**1. गर्भाधान संस्कार–** गर्भाधान संस्कार के पीछे मान्यता यह है कि स्त्री पुरुष के सम्बंध केवल भोग भोगने के लिए नहीं है, इसका मुख्य उद्देश्य पितृ ऋण से उऋण होने के लिए उत्तम संतान की प्राप्ति। यह भाव रखने से कामशक्ति का भाव तिरोहित होता है, हृदय व विचारों में पवित्रता आती है।

हमारी मानसिकता, हमारा आचार–विचार, हमारा खान पान, आसपास का वातावरण आदि गर्भ में आने वाले जीव पर प्रभाव डालता है। अत: इन सब में पवित्रता बनाये रख कर गर्भ धारण करने वाले शिशु पर सदाचार का अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

कितनी लंबी प्रक्रिया हैं हमारे जन्म की जो कुछ हमारे माता–पिता ने खाया, पीया, व्यवहार किया, आचरण किया उन सबसे उनके शरीर में बनने वाला रस प्रभावित होता है। उससे प्रभावित वहीं रस हमारे जीवन का कारण बनते है। केवल हमारे माता–पिता ही नहीं अपितु उनके माता–पिता के रस

का प्रभाव भी इसमें सम्मिलित है। जो हमारे माता–पिता के जन्म का कारण बना। इस प्रकार पूर्व की अनेक पीढ़ियों का खान–पान व व्यवहार का प्रभाव सूक्ष्म रूप से हम तक पहुंचता हैं। जो गुण–दोष हमारे दादा दादी, माता पिता न्यूनाधिक रूप में भी आएंगे। कितना लंबा इतिहास है हमारे जन्म का। हमारे जन्म की प्रक्रिया बड़ी लंबी है व निरंतर चलती रहती है। इसी को हम वंश परम्परा बोलते हैं। हमने इस कड़ी को बिगाड़ दिया तो हमारा इतिहास, हमारा राष्ट्र सभी इसका दुष्प्रभाव झेलने को मजबूर हो जाएंगे। हमको केवल स्वयं को ही पुष्ट, स्वस्थ, व्यवस्थित व सदाचारी नहीं बनाना इसके साथ हमारा परिवार, हमारा वंश, हमारा इतिहास और हमारे राष्ट्र को भी पुष्ट, स्वस्थ व सदाचारी बनाना है।

**2. पुंसवन संस्कार –** पुंसवन अर्थात पुरुषत्व युक्त होना। इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य माता के उधर में पल रहीं संतान के शारीरिक व मानसिक विकास की ओर खिंचवाना। अपनी संतान को बिगडते देख कर रोने वाली माताओं को समझ लेना चाहिए कि जो बालको को पालने का उचित समय था उन्होंने खो दिया। चरक संहिता में लिखा है की 'जैसी संतान प्राप्ति की इच्छा है उसी के अनुकुल आसपास का वातावरण रखना चाहिए।'

**3. सीमंतोन्नयन संस्कार–** अर्थ – 'स्त्रियों के सिर की मांग'

सौभाग्यवती स्त्रियां मांग भरती है। चरक ने चरक संहिता में लिखा है –

**'सौभनस्य गर्भधारणकारणम ।**
**लब्धदौहृदा तु वीर्यवन्त चिरायुषम् च पुत्रं प्रसुते ।।'**

अर्थात गर्भवती स्त्री को हमेशा प्रसन्न रखना चाहिए। उसकी इच्छा पूरी करने से संतान वीर्यवान और दीर्घायु होती है। उत्तम संतान अनायास पैदा नहीं होती इसके लिए पूर्ण मनोयोग की आवश्यकता है और उसी प्रकार कर्मो की भी अनिवार्य है। उसी भावना से यह संस्कार विधान अनिवार्य है। यह संस्कार बालक के गर्भस्थ होने के छठे या आठवे माह में किया जाता है। यहां संस्कार गर्भपात रोकने के लिए किया जाता है। इस काल में शिशु में चेतना का विकास होता है।

**4. जातकर्म संस्कार –** 'वे क्रियाएं जो शिशु के जन्म के बाद की जाती है।'

प्रथम तीन गर्भकाल में किये जाते हैं जबकि जातकर्म जन्म के बाद किया जाता है। जातकर्म की यह विशेषता है की शिशु को स्नान कराकर मधु स्वर्ण मिश्रित औषधी प्रदान, नाल छेदन, माता का स्तनपान कराके जहाँ उसके जीवन मार्ग की ओर बढ़ने का सहारा दिया जाता है वहीं उसके कान के पास गंभीरतापूर्वक मंत्रो का उच्चारण किया जाता है। शिशु सुनता है, समझता है, हाव–भाव जानता है अंत उच्चारण क्रियाओं का मौलिक भाव समझता है। अत: सभी क्रियाओं का मौलिक भाव मौलिक भाव समझता है। माँ का दुग्ध बच्चे के लिए प्रेम भाव का स्त्रोत है और मधु को चटाने से बच्चे के शारीरिक अंग ठिक प्रकार से कार्य करने लगते हैं।

**5. नामकरण संस्कार –** इस संस्कार के उद्देश्य का करते हुए वेदो में नामकरण के दो प्रयोजन है –

1. आयु व तेज में वृद्धि
2. सांसारिक व्यवहार उपयोग

मनुस्मृति के अनुसार, जन्म के 11वें व 12वें दिन शुभ तिथि, मुहूर्त में नामकरण किया जाता है। नामकरण के दिन सर्वप्रथम घर का शुद्धिकरण, माँ को स्नान कर नवीन वस्त्र पहनाकर, शिशु को भी शुद्ध जल से स्नान कराकर माता पुत्र को गोद में लेकर हवन कुण्ड समीप पिता के पीछे से आकर दक्षिणभाग में होकर बालक को पिता के हाथ में सौंपे बालक का सिर उत्तर दिशा में रखें। सभी स्वजन उपस्थित रहते हैं। इसके बाद स्त्री उसी प्रकार अपने पति के पीछे होती हुई उत्तर भाग में आकर पूर्व की ओर मुंह करके बैठे। अब बालक का पिता उसे वापस माता को सौंप दें। मनु के अनुसार – 'नामकरण संस्कार से बालक के आयु व तेज में वृद्धि होती है।'

सूर्य नमस्कार व सूर्य उपासना से कार्यक्रम शुरू होता है।

मनुस्मृति के 32 व 33 श्लोक में मिलता है कि बालक का नाम भविष्य निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका रखता है। बालक का नाम अपनी जाति, कुल, गौरव के अनुरूप हो।

**6. निष्क्रमण संस्कार–** अर्थ – 'बालक को घर से बाहर खुली हवा में घुमाना'

निष्क्रमण के दो अवसर शुभ माने जाते हैं –

1. बालक के जन्म के बाद तीसरा शुक्ल पक्ष तृतीया।
2. चौथे महीने की वह तिथि जिस दिन बालक का जन्म हुआ।

इसका उद्देश्य बालक के स्वास्थय को स्वस्थ व सम्मुनत करना और चौथे माह में बालक के ज्ञान व कर्मेंद्रियां सशक्त वह वायु व धूप को सहन करने योग्य हो जाती है।

इसकी मुख्य क्रियाएं सूर्यदर्शन, चंद्रदर्शन व देवदर्शन है।

**7. अन्नप्राशन संस्कार–** छ: महीने के बाद बालक में अन्य पचाने की शक्ति आ जाती है। इस काल में बालक को क्षार की आवश्यकता होती है। लवण युक्त अन्न अगर बालक को नहीं मिलता तो बालक मिट्टी खाना प्रारंभ कर देता है। बालक जब अन्न खाए तो उसके प्रति उपयुक्त भावना उत्पन्न हो सके।

**'जैसा खाए अन्न वैसा होए मन'**

इसी उद्देश्य से अन्नप्राशन की आवश्यकता होती है।

**8. चूड़ाकर्म संस्कार (मुण्डन) –** मनुस्मृति में लिखा है की यह संस्कार पहले या तीसरे वर्ष में करना चाहिए। उत्तरायण काल में शुक्ल पक्ष में शुभ मुहूर्त, शुभ दिन देखकर करना चाहिए। यह संस्कार बल, आयु, तेज वृद्धि के लिए किया जाने वाला संस्कार है। त्वचा संबंधी रोगों के लिए यह संस्कार बालों का मुंडन देने से शरीर का तापक्रम कम हो जाता है।

इसके साथ शिखा रखनी चाहिए जिससे हमारे ज्ञान शक्ति को सदा चौतन्य रखते हुए उसमें वृद्धि होती है। हमारी बुद्धि को शास्त्रों में सूर्य का अंश माना गया है।

**9. कर्णवेध संस्कार –** जन्म के तीसरे या पांचवें वर्ष संस्कार का समय माना गया है। बसंत व शरद ऋतु के किसी भी माह के शुक्ल पक्ष में मुहूर्त के अनुसार शुभ दिन देखकर यह संस्कार करें। बालक को पूर्व की ओर मुंह करके बिठाएं। मिठाई देकर दांया कान छेदन सुई से करना चाहिए। छेदन पुरुष या सौभाग्वती स्त्री कर सकती है। इस संस्कार से बालक नपुंसक नहीं होता, बालिका बंध्या नहीं होती, इससे बवासीर नहीं होता व अण्डकोष क्षीण नहीं होता।

**10. विद्यारम्भ संस्कार –** आत्मोन्नति की युक्ति का मार्ग विद्या है। हमारे शास्त्रों में कहा गया है –

**'सा विद्यया विमुक्तये'** अर्थात विद्या वही है जो मुक्ति दिला सके।

विद्या का आरंभ पूर्ण संस्कार विधि से हो तभी बालक ज्ञानवान और सुसंस्कारीत होकर वर्तमान की दुष्प्रवृत्तियों से बचे रह सकता है। इस संस्कार से बालक में अपने ज्ञान का बोध बना रहता है।

बसन्त पंचमी अथवा पुष्य नक्षत्र बृहस्पतिवार को इस संस्कार के लिए शुभलग्न माना जाता है। इसमें सरस्वती की उपासना मुख्य है। क्योंकि विद्या की देवी सरस्वती है।

**11. उपनयन संस्कार –** इसका अर्थ – 'गुरु का सामीप्य प्राप्त करना।' इसे यज्ञोपवीत व जनेउ संस्कार से भी जाना जाता है। यज्ञोपवीत का अर्थ 'परमात्मा को प्राप्त होने वाला' (यज्ञ) यज्ञी वे विष्णु (शतपथ बह्मण) अर्थात् यज्ञ के लिए धारण किया जाने वाला सूत्र जिसको धारण करने से मनुष्य को यज्ञ प्राप्त करने का अधिकार मिल जाता है।

बाह्मण बालक को 8 वर्ष, क्षत्रिय को 11वें वर्ष व वैश्य को 12वें वर्ष यज्ञोपवीत करना चाहिए।

बह्मण बालक का बसंत ऋतु में, क्षत्रिय बालक का ग्रीष्म व वैश्य का शरद ऋतु में यज्ञोपवीत करना चाहिए।

गृह सूत्र में बताया गया है –

**'बसन्ते बाह्मणे, ग्रीष्मे राजन्य, शरदि वैश्यम्'**

**12. समापवर्तन संस्कार –** बालक जब गुरूकुल से घर पुन: लौटता है तब उसका विधिवत संस्कार करके उसको अपने कर्तव्यों व दायित्वों का बोध कराके गुरुकुल से विदा किया जाता है। इसी को समापवर्तन कहा है। यह गुरुकुल से विदा होने से पूर्व परीक्षा हेतु है।

**13. विवाह संस्कार –** विवाह संस्कार का मुख्य उद्देश्य केवल भोग विलास ही नहीं और न केवल संतान उत्पति ही विवाह का उद्देश्य है। परमेश्वर की कृपा से पुरूष को बहुत बढ़िया बीज और स्त्री को खेत मिला है। विवाह से स्त्री–पुरुष को संभोग का वैध अधिकार मिला है काम वासना नियंत्रित करना इसका मुख्य उद्देश्य है। इसी को ध्यान में रखकर पुरूष अपने अधिकार का उपयोग करते हुए योग्य संतान उत्पन्न करे।

मनुष्य पर तीन ऋण है –

1. देव ऋण
2. ऋषि ऋण
3. पितृ ऋण

विवाह का एक अन्य उद्देश्य 'वसुदेव कुटुम्बकम' के पवित्र आदर्श को व्यवहारिक रूप देना है।

विवाह 8 प्रकार के होते हैं।

**14. वानप्रस्थ संस्कार –** यह संस्कार 51वें वर्ष आयोजित किया जाता है। इसमें मानव अपने घर गृहस्थी की मोह माया के प्रति आसक्ती त्याग कर अपनी आय को सामाजिक एवं परमार्थिक कार्यों में लगा देता है। सामाजिक एवं परमार्थिक कार्यों में व्यस्त रहना वानप्रस्थ अवस्था है।

**15. संन्यास आश्रम –** यह 75 वर्ष के बाद यह काल सब को छोड़कर केवल आत्म कल्याण साधन में जुटनें के लिए है।

मनुस्मृति – **'चतुर्थ भायुषो भागं त्यक्त्वा सेन परिव्रजेत'**

अर्थात आयु का चौथा भाग सब कुछ छोड़कर संन्यास में बिताना चाहिए।

**16. अन्तिम संस्कार –** मनुष्य की देह जड़ है। इसमें चेतना जो है वो प्राण है। जीव क देह से बिछुड़ना मृत्यु है। मरते समय प्राण मनुष्य के कपाल को भेद कर निकल जाते है। यही सर्वोतम मृत्यु हमारे शास्त्रों ने मानी है। यह मनुष्य का 10वां द्वार है, जिस मनुष्य का 10वें द्वार से प्राणोत्सर्ग होता है वह मनुष्य 84 के चक्कर से मुक्त हो जाता है। ऐसी हमारे शास्त्रों की मान्यता है की वह मनुष्य भाग्यशाली होता है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची :–**

1. मनुस्मृति
2. याज्ञवल्कय स्मृति
3. व्यास स्मृति
4. नारद पुराण
5. गृहसूत्र
6. छान्दोग्य उपनिषद

**********